

प्रस्तुत पुस्तक में मानव के कर्म तथा कर्मफलों की मीमांसा वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से सयुक्तिक की गयी है। लेखक की यह दृढ़ मान्यता है कि मनुष्य का शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म तथा शुद्ध उपासना ही मोक्षप्राप्ति कराने वाले होते हैं और वेद की यह सत्य निर्भ्रान्त मान्यता है कि मनुष्य को स्वकर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**

योगदर्शन के व्यासभाष्य में बहुत स्पष्ट करके यह स्वीकार किया गया है —  
**इयं कर्मगति विचित्रा दुर्विज्ञाना चेति।**

अर्थात् कर्मों की गति बहुत विचित्र है और इसको समझना व जानना अति कठिन है। विद्वान् लेखक ने कठिन परिश्रम करके वेद, छः दर्शन, मनुस्मृति तथा महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का गहन स्वाध्याय करके जो सार रूप निष्कर्ष निकाला है वह अतीव शलाघनीय है। ईश्वर मनुष्य के कर्मों का फल एक अटल शाश्वत व्यवस्था से देता है, इसमें वह किसी भी प्रकार की त्रुटि व पक्षपात न करके अपने शाश्वत नियमों के अधीन होकर ही देता है। मानवीय कर्मफल व्यवस्था में जो त्रुटियाँ, कमियाँ होती रहती हैं, उसमें कतिपय कारण होते हैं, जैसे मनुष्यों की अहृदयता, साक्षी का ठीक न होना तथा स्वयं न जान पाना इत्यादि। परन्तु परमेश्वर सर्वज्ञ होने से और निष्पक्ष होने से जो कर्मफल व्यवस्था करता है उसमें कोई त्रुटि व दोष नहीं रह पाता।

मानव की आयु के विषय में विभिन्न धारणाएँ हैं, जैसे आयु निश्चित, अनिश्चित, मानव आयु को सदाचारादि नियमों से बढ़ा सकता है अथवा दुराचार आदि के कारण रोगग्रस्त अथवा दुर्घटनादि के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त करता है। वेदादि के प्रमाणों से आयु का निश्चित होना सम्भव नहीं है। आयु कर्मों का फल है, और इसे घटाया बढ़ाया भी जा सकता है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु फल भोगने में ईश्वरीय व्यवस्था में परतन्त्र रहता है। जीव नित्य चेतन सत्ता है, उसके विषय में यह महाभ्रान्ति है कि वह ईश्वर की प्रेरणा से कर्म करता है। ईश्वर की त्रिकालज्ञता भी जीव के कर्मों की अपेक्षा से है। ईश्वर को सर्वज्ञ तो माना गया है किन्तु जीव के भविष्य के कर्मों को पहले नहीं जानता है।

मानव के बन्धन और मोक्ष का कारण मन है। चित्त की वृत्तियाँ ही हमारे शुभाशुभ कर्मों का आधार हैं। अविद्यादि पंच क्लेशों का दग्ध बीज की भाँति करना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा इनमें फंसा मन मोक्षप्राप्ति में असमर्थ ही रहता है और आसुरी सम्पद से घिरा होने अर्थात् अभिमान, क्रोध, मोहादि से ग्रस्त रहकर जीवन के लक्ष्य मोक्षप्राप्ति से वंचित ही रहता है और सुखों का न प्राप्तकर दुःखसागर में गोता लगाता रहता है।

दर्शनों की इस अरण्यानी में घुसकर ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान् लेखक अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो गया है, किन्तु इनका स्पष्टीकरण करना भी अत्यन्त आवश्यक था। मानवीय कर्मफल व्यवस्था में जीवात्मा वाचिक व शारीरिक कर्मों के फल आंशिक प्राप्त

कर पाता है सर्वाश में नहीं किन्तु ईश्वरीय व्यवस्था में वाचिक शारीरिक कर्मों के साथ मानसिक कर्मों का भी फल मिलता है। लेखक ने मानवीय कर्मों के फल प्राप्ति में वर्तमान के प्रचलित कानूनों के आधार पर भी दिये जाने वाले दण्डों का दिग्दर्शन कराया है और जिनको देखकर यह आभास होता है कि किस प्रकार मानव की अल्पज्ञतावश भूलें होती रहती है और ईश्वरीय व्यवस्था में ऐसी भूलें होना कदापि सम्भव नहीं है। क्योंकि सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी और मानव के मनों की बातों को पूर्णता जानकर ही कर्मफल देता है।

लेखक ने अन्तिम अध्याय से पूर्व नियतिवाद (भाग्यवाद) पर विचार किया है, और मनुष्यों में प्रचलित मान्यताओं का प्रत्याख्यान करके वैदिक कर्मफल मीमांसा में ऐसी बातों का कोई स्थान नहीं है जैसे —

१. सकल पदार्थ है जग माही, भाग्य हीन नर पावत नाही।
२. होई सोई जो राम रची राखा,को कर तर्क बढावे शाखा।

और अन्त में कर्म फल मीमांसा में अनेक प्रकार की शंकाये देकर उनका यथामति समाधान करने का भी प्रशंसनीय प्रयास किया गया है।

आशा है स्वाध्यायशील, बुद्धिजीवी मनीषी विद्वद्गण तथा जागरूक-दयानन्द-सन्देश के पाठक और विचारशील मनीषी पुरुष अवश्य ही पुस्तक का संग्रह करके जहाँ विविध भ्रान्तियों का उन्मूलन कर सकेंगे, वहाँ विद्वान् लेखक का उत्साहवर्धन करेंगे। यह पुस्तक वास्तव में संग्रहणीय है। हम विद्वान् लेखक का भूयोभूय धन्यवाद करते हैं और उनके उत्तम स्वास्थ्य के लिये परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

आचार्य राजवीर शास्त्री, दयानन्द संदेश, (अंक सित० २००३)